यह दिखता है जो सागर

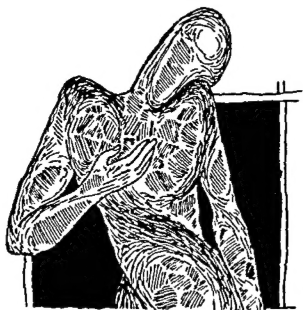
(कविता संग्रह)



राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर रै
आर्थिक सहयोग सो प्रकाशित

रिद्धि-सिद्धि प्रकाशन

3 छ-40, पवनपुरी, बीकानेर (राज) 334 003



वत्सला पाण्डेय 'वत्सल'

यह दिखता है जो सागर

YEH DIKHTA HAI JO SAGAR (Poetry)
by - *Vatsla Panday 'Vatsal'*

Rs 125/- Ed 1998

Published by -
RIDDHI SIDDHI PRAKASHAN
3 Cha-40 Pawanpuri Bikaner 334 003

	वत्सला पाण्डेय 'वत्सल'
संस्करण	1998
मूल्य	एक सौ पच्चीस रुपए मात्र
कलापक्ष	गुरुदेव, अडिग
प्रकाशक	रिद्धि सिद्धि प्रकाशन
	3 छ 40 पवनपुरी,
	बीकानेर (राज) 334 003
मुद्रक	सन्तोष आफसेट, बीकानेर

मातृत्रयी गायत्री, भगवती शिव कुमारी
और
श्रद्धेय गुरुवर श्री श्रीराम आचार्य
को सादर

कितना अच्छा हो
न मैं झील बनूँ
और
न तुम समन्दर
बस हो जाए
दो धाराओ की तरह
सागर जब होगा भीतर
फिर हम एकात्म प्रवाह

मन



यह दिखाता है
जो सागर

ऐ सागर।
मैं ही नहीं डूबी थी
तू भी तो
उतर गया था
मन मे

वह जो भरता है भीतर

हर रात रचता है
मेरा मन
एक कविता
ले लेती है
यथार्थ रूप
सुबह वही कविता
शाम तक
उसका साथ
भर देता है
अनुभव अनुभूतियो से
मेरा मन
फिर से
रचने को
एक कविता

भरना पल-पल का !

मन रिसता है
रिसने दो इसे
रिसने दो पीड़ाएँ
टपकने दो दर्द
खाली होने दो इसे
फिर से भरने के लिए
फिर से रिसने के लिए
मन रिसता है
रिसने दो इसे

चल कि उड़ना है

एक चिड़िया भरती है
जब पहली उड़ान
उस विस्तृत नीलिमा मे
तब नहीं होता उसे अहसास
सुरक्षा या असुरक्षा का
वह तो बस
पा जाना चाहती है
अपने मन का विस्तार
उस विस्तृत नीलिमा मे
एक चिड़िया भरती है
पहली उड़ान
इस तरह से

कब टूटेगी सलाखे

पिजरे मे छटपटाता
पाखी मन
सलाखे पकडे
आसमान को तकता
पाखी मन
ये कैसी बेबसी और व्याकुलता
ओ पाखी मन ।
कभी गुमसुम बैठता
कभी सिर पटकता
करता अपने को लहुलुहान
पाखी मन
दाना पानी भी नहीं भाता
सोने का पिजरा नहीं सुहाता
पिजरे का सुख भी
रास नही आता
आ रहे आसमान से सकेत
ओ पाखी मन ।
नीला आकाश बुलाता
अपने पख पसार
कब विचरण कर पाएगा स्वछन्द
तू पाखी मन
किस दिन टूटेगी सलाखे
कब मिलन होगा प्रियतम से
ओ पाखी मन । ओ पाखी मन ।

अब कहाँ से लाऊँ वो भाषा

मेरे आँगन आती है चिडिया
खाती है दाना
और रोटी के नन्हे टुकडे
एक से दो
और दो से अनेक हो गई चिडिया
फिर भी
पहली चिडिया ही
करती है हर वक्त
इतजार मेरा
मैं भूल जाती हूँ जिस दिन
देना उसे रोटी
मेरे चारो ओर उडकर
मेरे आस–पास मडरा कर
याद दिलाती है
चाहिए मुझे रोटी
उसे देख इच्छा जगती है मन मे
मुझसे पहचान का रिश्ता
जोडने वाली
ये चिडिया
बैठे मेरे हाथ पर
खाए मेरे हाथ से रोटी
दुबके मेरी गोद मे
तब सहलाऊँ मैं पंख उसके
किन्तु,
बढाते ही हाथ
उड जाती वह फुर्र से

भयभीत और शकित
देखती मुझे
करती है मेरे प्रेम पर सदेह
मेरा बढा हाथ लगता
उसे बाज के पजे सा
शत्रुओ से घिरी
नील गगन मे
अपनी स्वतत्रता से जूझती
वह नन्ही सी चिडिया
कैसे करे यकीन ?
मेरा हाथ बाज का पजा नही
वह तो देना चाहता है प्रेम
सहलाना चाहता है उसके पख
नही चाहता
उसकी स्वतत्रता को छीनना
कब सम्झेगी वह ?
मेरे स्नेहिल स्पर्श का मर्म
मेरी मूक वाणी से निकलते अर्थ
इतजार है मुझे उस समय का
उस समय का

बोला बसंत कि मैं ही

बसत के आगमन पर
प्रकृति करती है
श्रृगार नववधू सा
करती है आह्लादित
उसके यौवन की मादकता
मदहोश करती है
उसकी सासो की महक
तब कुहुक उठती है
मेरे भीतर बैठी कोयल
प्रत्युत्तर मे नहीं कुहुकती
मेरे युग की कोयल
इस मौन प्रतिध्वनि से
चुप हो जाती
मेरे मन की कोयल
कब तक अकेले ही करेगी
अभिनदन बसत का
गाएगी कब तक अकेले ही
गीत बसत का ?
युग की कोयल का मौन
उसे गूगा बहरा करार देता है
लगता है मेरे युग की
कोयल को बसत के आगमन
और गमन से फर्क नहीं पडता
बोलने सुनने की शक्ति के साथ–साथ
युग की कोयल खो चुकी है
अहसास की शक्ति भी ?
अहसास की शक्ति भी ॥

सर्द शाम की ठिठुरन

ढलती शाम की उतरती धूप
ऑगन के एक कोने पर
अपने क्षीण होते अस्तित्व को
जबरन प्रत्यारोपित करने का
अथक प्रयास कर रही है
वैसा ही प्रयास जैसा
उम्र के अन्तिम पडाव पर
खॉसी का दौर कराता है
उसके होने का बोध
घर के किसी कोने मे
सर्द शाम की ठिठुरन मे
धूप की गरमाहट को
प्राप्त करने का असफल प्रयास
साबित करता है,
जीवन की ऊष्णता इसी भॉति
समय के शीत मे लुप्त हो गई
उसे पाने की अदम्य लालसा
मन के किसी कोने में
सर्प सी फन उठाए डस रही है
डस रही है

आखो से परे भी था कुछ

बिन पानी के
तड़पती मछली
देखी है आपने
पर -
प्रेम जल बिन
छटपटाता मन
नहीं देखा आपने
देखते -
आँख से वो सब
जो भी आया
सामने
पर -
कहाँ देखा
वो मरता मन
जो नहीं मरा
किसी के सामने
दुख से छल-छलाते आँसू
पलको पर लगे कॉपने
उन मौन आहो से
ये धरा और अम्बर
लगे थरथराने
ईश्वर तेरा सिहासन
लगा था तब डोलने
आना पडा था तुम्हे
द्वार प्रेम का खोलने

कभी तो

मन यात्रा करता है
दिमाग की अँधेरी सुरगो मे
जो होती है अन्तहीन
जिनमे भटक जाता है मन
वो बनाती है भूल भुलैया
अपराध तत्र सी गलियाँ
जिनमे घुसना है आसान
और निकलना
नितान्त कठिन
ऐसे मे मजबूर हो मन
चलता है
थकता है
रुकता है
दम लेता है
देखता है पीछे मुडकर
खडा होता है जहाँ
घना अधकार
उसे लीलता प्रतीत होता है
भयभीत मन
आगे बढता है
आशा की डोर थामता है
कभी तो आएगी मजिल
कभी तो खत्म होगा सफर
अनाम अनन्त अगोचर का

कोई अपना सा

मन और मन के बीच की
कैसी ये दूरी
क्या देह की
या समाज की
या विचार की ?
मन से मन की रहती दूरी
कैसी ये दूरी ?
क्या भावनाएँ नही थीं ?
या सवेदनाएँ नहीं थीं ?
या कि अनुभूतियाँ सुप्त थीं ?
तू ही बता ऐ मन !
क्या रहेगी
ये दूरियाँ यू ही ?
मन की एकाकी तडप
सदा सिसकती रहेगी यू ही ?
मन ऐ मेरे मन !
कब पाएगा
तू अपना सा दोस्त मन -
दोस्त मन ?

कभी देखना यूं

कभी चाहोगे
तो दिखलाऊँगी
अपना बाल मन
जिसमे रहतीं हरदम
नन्हीं नन्हीं खुशियाँ
छोटे-छोटे स्वप्न
अनगिनत जिज्ञासाएँ
कभी देखा तुमने ?
चिडिया का अपने बच्चे को
दाना खिलाना
देखा कभी तुमने ?
माँ के प्यार की गरमाहट मे
किसी शिशु का सोना
बस ऐसे ही
मेरा मन खाता है दाना
और सोता है
आत्मा के आँचल मे
रहता है उसकी पनाह मे
मेरे पास तो वो
आता-जाता रहता है
अपनी मीठी बातो
स्वप्निल आँखो से
मोहित करता है पर -
मेरे पास नही रहता है
क्योकि
वो बडा नहीं होना चाहता है
वो बडा नहीं होना चाहता है

बुलाता है नदी को यूं

नदी –
पोखरो तालाबो के लिए
नहीं
सागर के लिए
ठहरती है
उसके विशाल सीने पर
अपना सिर रखती है
सागर –
बुलाता नदी को
इस तरह
अपनी बाहे फैलाए
समाता मुझे तू
जिस तरह
तभी तो दमकते हैं
प्रेम के मोती
मनो मे इस तरह

यह अकेला मन और

गिद्धो की टोली
बैठी है
इस इतजार मे-
कि कब कोई पशु
समूह से बिछुडे और
अकेला पड जाए
सिहर उठता है मन
उस अजाम से
क्योकि
आज तो हर व्यक्ति
अकेला रह गया

यह दिखता है जो सागर

कन्या कुमारी के
पद पखारता सागर
अपनी बॉहे
फैलाए
मुझ को बुलाता
सागर
और
एक दिन
अपनी बॉहो मे
भर लिया तूने
मैं -
भीग उठी
अदर तक
ऐ सागर ।
मैं ही नहीं डूबी थी
तू भी तो
उतर गया था
मन मे

स्त्री



शेष रह गए
पन्ने जो कोरे

माँ बहन बेटी बहू
रिश्ते ही नाम हो गए
अपनी पहचान और नाम
जाने कहाँ खो गए?
जीवन की किताब के पन्ने
कोरे ही रह गए

फिर-फिर जो सोचूँ मैं

विचारो की बात आती है
तब नकारा जाता है
स्त्री को
शकित होते हैं
उसकी विचार क्षमता पर
एक प्रश्न -
उठता है मेरे मन मे ।
जिसको सहेज कर
पालती है कोख मे
वह पुरुष क्योकर
उँगली उठाता है
उसकी क्षमता और सोच पर

जो हो जाए प्रकाश वह तुम्हारा

श्रद्धा आओ । फिर से
इन मनुओ को दो आधार
मानव जन्म ले
फिर से
तुम्हारी कोख मे
सृष्टि क्रम चले निर्बाध
इच्छा ज्ञान और क्रिया के
समन्वय की जरूरत पडी है
फिर से
श्रद्धा जगो । सबके मन मे
फैलाओ विश्वास का प्रकाश
फिर से

वह जो है ही भीतर

खेतो मे काम करती औरते
रग बिरगे तितली के पखो सी
हरे-हरे खेतो मे
मडराती औरते
कोमल हाथो से
प्रकृति की कोमलता
सँवारती औरते
खेतो मे काम करती औरते
प्रकृति ही औरत है
या औरत मे प्रकृति
असमजस मे पड़ गई
जब देखा
खेतो मे सगीत बिखराती औरते
खेतो मे काम करती औरते

जोड दे जो वह माँ

बच्चा
खेल रहा था
खिलौने से
अचानक टूट गया खिलौना
रोने लगा बच्चा
अपने नन्हे हाथो मे लिए
खिलौने के अवशेष
रोते रोते चल दिया
पिता के कमरे की ओर
राह मे ही
मॉ ने कहा -
लाओ मैं जोड दू ।
तुम्हारा प्यारा खिलौना
बच्चा चकित था
मॉ के इस रूप पर
पिता भी अवाक खडे थे
दरवाजे मे

... ... है तुम्हारा वदना
हम प्रकृति का अग
ईश्वर ने सिरजा हमे
मानव के लिए
न समझे मानव
तो क्या करे हम ?
हमारी मजिल सागर है
उसके विराट स्वरूप मे
प्रेम का समर्पित भाव लिए
समाती है उस मे
वह नही पूछता
तुम पवित्र हो या अपवित्र ?
दुनिया की गदगी समेटे
मुझे क्यू कर रही हो दूषित ?
उसे आता है समर्पण का सम्मान
वह जानता है
प्रेम का प्रत्युत्तर प्रेम से देना
फिर क्यो रुके
ठिठके शकित हो हम ?
मुझे टटोलती नजरो से देखते हुए
बोली वह मानवी नदी !
तुम भी तो चाहती हो
ऐसा ही धीर गम्भीर
विशाल हृदय पुरुष
जो समझे समर्पण का भाव
सम्मान करे तुम्हारे प्रेम का
वो जुडे तुम्हारी आत्मा से
बोलो ! मै ठीक कह रही हूँ न ?
मैं क्या कहती ?
सिर झुकाए सोचती रही
इस सृष्टि मे
नदी सा समर्पण

और सागर सा आत्मसात करने का
भाव क्यू नही ?
स्त्री मे नदी सा समर्पण नही
या
पुरुष ही सागर सा नहीं
आज भी खोज रही
मैं इसका उत्तर ।
इसका उत्तर ।

अपनी आँखो के देखते हुए पार

मेजबान की प्रतीक्षा मे
कमरे का निरीक्षण करते हुए
इधर–उधर देखते हुए
शीशे की बद अल्मारी मे
झॉकती गुडिया की ऑखो से
मेरी ऑखे जा टकराईं
अचानक लगा
उन ऑखो की नीलिमा
बेजुबान नहीं है
उन ऑखो मे
मुक्ति की याचना है
बेजान व्यक्तित्व मे
आत्मा की चाहना है
सॉसो के तारो को झनझनाते हुए
पैरो को लयबद्ध गति
देने की कामना है
जैसे ऊब गई है वह
प्रदर्शन की कैद से
उसकी ऑखे थक गई हैं
कमरे की दीवारो को तकते हुए
गिरा देना चाहती है ये दीवारे
और पछी की तरह
उन्मुक्त और स्वच्छद
उडान भरकर
देखना चाहती है वो क्षितिज
जहाँ आसमान
झुक आता है धरती पर !

जब उतरती हैं खुशियाँ

दीर्घकालिक
कैद के बाद
अल्पकालिक
स्वतन्त्रता
कितनी उन्मुक्तता
और
असीम आनन्द से
भर देती है
ये मैंने
तब जाना जब
श्वेत कपोतों को
पिंजरो से निकल
नीले आकाश में
उडान भरते देखा
कलाबाजियाँ खाते
खुशी का इजहार
करते देखा
उन पलो के आनन्द को
आत्मा मे उतरते देखा

होता है यूँ आधा कोई

मैं देख रही थी
उस स्त्री को
सार्वजनिक नल के पास
बैठी
मॉज रही थी बर्तन
उसकी ऑखो से
टप–टप गिरते ऑसू
मिल रहे थे रेत मे
बूँद–बूँद सोख रही थी रेत
हो कोई
अनमोल धरोहर जैसे
या कि
अपनी ही पीड़ा की समरसता को
पी रही थी रेत
बर्तनो पर गिरती
नल की धार
और बहते
अविरल अश्रुधार
हो रहे थे एकमेव
नाली मे बहते
देख रही थी
उन मोतियो को
शायद –
उस को सहेजने वाले
हाथ नही थे

कहो जो मुझे कुछ अगर

मैं
कोई पत्थर
या बुत नहीं
तुम्हारे अह की
तुष्टि का
खिलौना भी नहीं
मन मदिर की
वो मरमरी मूरत भी नहीं
जिसे पूजा जा सके
किन्तु प्यार नहीं
क्या जानते हो तुम ?
मैं भावो से भरी
सवेदनाओ की
लहलहाती सलिलासी
जीवन से भरी
ईश्वरीय कृति हूँ
पच तत्वो से बनी
पर प्रेम तत्व से भरी
तुम्हारी साँसो को महकाती
तुम मे ही रची बसी
तुम्हारी आत्मा
ये मैं ही तो हूँ.

अस्तित्वमयी तू जो है

हे स्त्री !
तू
कल–कल करती
नदी का प्रवाह
सदा बहती रहना
बाँटती रहना
प्यार का अमृत
यदि मिले
कोई सागर
जो लगता है असम्भव !
करना तब समर्पण विराट !
अन्यथा
अस्तित्वमयी तू बहती ही रही जो–
बहती रहना !

सूली ऊपर सेज पिया की

कटी हुई पतग
जा रही थी
हिचकोले खाती
अज्ञात गन्तव्य की ओर
न कोई मजिल
न ठिकाना
छोड दे प्रवाह मे
कोई स्वय को अछोर
अचानक
मदिर के शिखर ने
थाम लिया उसे
शिखर की शूल मे
अटकी थी डोर
पतग की मजिल
वही हो गई थी
शिखर से लिपट
वह रहने लगी वहीं
मस्त बयार
और आँधी–तूफान के
झकोरो को
समभाव से सहना
सीख गई थी
जब भी करती
उस शूल पर विश्राम
कह उठती
सूली ऊपर सेज पिया की।
सूली ऊपर सेज पिया की।

गहरे जल मे उतरता है कोई

एक से अनेक स्त्रियों
भोगता आदमी
प्यासा ही
रह जाता है
फिर -
मर जाता है
उसे -
कौन बताए
प्यास
रोटी से नही
पानी से
मिटती है
गहरी प्यास
गहरे जल मे
उतरने से
बुझती है
और ये जल है
प्रेम ।
केवल
प्रेम ॥

पीकदान

ये कोई पीकदान नहीं
कि पिच से थूका
और परे सरका दिया
ये कोई नाली भी नहीं
जिसमे अपनी मलिनता
बहाने का
प्रयास करो तुम
ये सडक भी नहीं
कि जब चाहो
मजिल पाना
बिछी रहे कदमो तले
ये मिट्टी का लौंदा
या राह का पत्थर भी नहीं
जिसे पैरो तले कुचलने को तत्पर
और ठोकर मारने को
तैयार रहो तुम
बर्बरता की हद तक
शोषण करो तुम
फिर जीवन भर मानते रहो
केवल एक 'चीज
और दैनिक जरूरत का
उपकरण'
बहुत हुआ–
सदियो से चले आ रहे
इस चलन को
अस्वीकार करती हूँ मैं

मै
केवल एक देह नही
जीवन से भरपूर
ईश्वरीय कृति हूँ
मेरे भीतर भी
आत्मा निवास करती है
इस जीते जागते मदिर मे
भावनाएँ नीराजन करती है
प्रेम और करुणा के गीत गाती हैं
इसी मदिर को तुम
तोडते रहे
रौंदते रहे
मूर्ति को खड खड करते रहे
मानवीय सवेदनाओ का
ढिढोरा पीटते हुए
मानव होने का दावा करते रहे
किन्तु
रीतती रही तुम्हारी मानवता
बन गए तुम अमानुष
निकल आए तुम्हारे नाखूनो मे
और नाखून
दातो मे और लम्बे दात
अपने पशुत्व को
उडेलते रहे मेरे भीतर
अपने बलात प्रयासो से
देह रूपी मदिर टूटा
विश्वास की मूरत हुई चूर
नियति भी हुई क्रूर
पूछती हूँ स्वय से
क्या वही थी मैं ?
जब उतरा मेरा लहू
दूध बनकर रगो मे तुम्हारी

कभी सजाई कलाई तुम्हारी
गोद मे बैठ खिलखिलाई
कन्या तुम्हारी
रिश्तो की मयादा
ओर बधनो की गरिमा की
लॉघ गए दीवारे सारी
क्योकि
तुम्हे तो दिखती थी
दिखती थी केवल
एक नारी देह
गली मोहल्लो का हो झगडा
या धर्मो का हो फसाद
या एक देश का दूसरे देश पर अधिकार
भोग्या बनी ये देह
अपमान की वेदना से
अस्तित्वहीनता की पीडा से
कराहती रही मेरी देह
भावनाओ के चिथडे पडे
सिसक रहे थे सडको पै
बह रहा था गर्म लाल रक्त
शहर की नालियो मे
और भर उठे लबालब
घरो के पीकदान
तुम्हारे पीक से
क्या यही हूँ मैं ?
एक चीज ?
एक सडक ?
एक नाली ?
एक पीकदान ?

पत्थर नहीं होती वह

औरत का मन
गीली मिट्टी सा
जिसे सँवारने को चाहिए
प्रेम सा सहज स्पर्श
उसे घडने को चाहिए
एक तन्मयता
जो रच बस जाए
उसके कण कण मे
जैसे बनाता कुम्हार
गीली मिट्टी से
तरह तरह के पात्र
किन्तु, उस मूर्तिकार की तरह
पत्थर मत समझो
उसके मन को
जो प्रहारो के जरिए
एक बुत तो गढ लेता है निर्जीव सा
सुकून नहीं मिलता उससे
जबकि- स्नेहिल स्पर्श से बने
पात्रो से कोई अपनी
प्यास बुझा लेता है
कोई भावनाओं के
फूल खिला लेता है
सजाता जीवन के
उन पलों को
जब उसे
प्यार के अमृत की
जरूरत होती है

कोख

(1)
कोख ऐसी नही थी
अब
हो गई है बॉंझ
नही जनती है बच्चे
बारिश के
मौसम सी
प्रेम की फुहार का
भ्रम लिए
उगते हैं
खरपतवार
और
कुकुरमुत्ते

(2)
कोख
बॉंध दी गई है
प्रसव करती है
उनके -
जादुई इशारो पर
दुनिया की भीड मे
बढती जा रही है
भीड

(3)
कोख को
कब मान्यता मिली ?
देता भी कौन ?
जो पले थे
कोख मे
वही उस पर
कर रहे है
ताडव

(4)
कोख यत्र
आधुनिक मत्र
स्त्री की गुलामी का
जिसमे रखता है
पुरुष -
स्त्री से छुपाकर
हथकडियॉ
और बेडियॉ

(5)
मेरी कोख से
प्रसवित नहीं हुए
बच्चे।
एक वहम था
मैंने
पैदा किए बच्चे
क्या सच ही
इस युग में
पैदा हो रहे हैं
बच्चे ?

(6)
हे ईश्वर !
ऐसी कोख लेकर
मै क्या करूँगी ?
नही चाहिए
तेरा वरदान
और
ऐसी पूर्णता
इससे तो मैं
बॉझ भली

जिससे भाग रहे हो तुम

तुमने पाया
केवल
स्त्री का तन
जिस दिन खोज लो
स्त्री का
सागर मन
तुम-
डूब सको
निर्भय होकर
तुम्हे मिलेगी
तुम्हारे
भीतर की
पूर्ण स्त्री

शेष रह गए पन्ने जो कोरे

एक लडकी
जब आती है पिया के घर
छोड आती है अपना अतीत
अपनी सखियॉं और उनकी बतियॉं
एक कोने मे सहेज आती है
यौवन के सपने
और कुछ मीठी यादे
छूट जाती है पीछे
भाई-बहनो से की तकरार
और हो जाते हैं
सम्बन्ध दरकिनार
आता है जब उम्र का उन्माद
हर एक ऑख मे लडकी
जवान हो जाती है
पिता को कोचते हैं
उसकी स्वतत्रता पे
नाक-भौं सिकोडते हैं
पिता की इज्जत का पर्याय
हो जाती है लडकी
अरे देखो ये फला की लडकी
यहॉं भी जुडा है पिता का नाम
और इस नाम की खातिर
उस हिरणी पर डाल देते हैं जाल
मृगमरीचिका से सुनहरे ख्वाब देखती
दस्तखत कर देती है
स्वतत्रता की चाह मे
स्वतत्रता को बन्धक बना देती है

अब दिया जाता है
पति का नाम-
दिए जाते नए रिश्ते
नए नियम
नए नाम
दिया जाता है कैद के लिए घर
जहॉ होती है उससे 'अपेक्षा'
और की जाती है वहॉ उसकी उपेक्षा
सृजनधमा
पुष्पित पल्लवित होती है
नवमानव का विकास करती है
ऐसी सामर्थ्यवान के पास
होता नहीं कुछ खास
पति की पहचान लिए
बच्चो को भी देती है
पिता का नाम
और वश
कर्त्तव्य की वेदी पर बलि होती है
रीत जाता है मन का घडा
खाली और शुष्क होकर भी
कर जाती एक वृक्ष खडा
उम्र के अन्तिम पडाव तक आते आते
अपनी नियति स्वीकार लेती है
रह जाती अपनी सत्ता से अपरिचित
आलम्बन के घरोंदे की आदी हो जाती है
पीछे अपने
शून्य व अन्धकार पाती है
जीवन सफर में अपने कदमों के निशा खोजती
बैसाखियो के निशा पाती है
अपने को खोजती
थक कर कर लेती है ऑखे बद
करती है अन्तिम यात्रा

और लोग कहते है -
फला की माँ का देहान्त हो गया
यहाँ बेट का नाम उसकी पहचान बन गया
माँ बहन बेटी बहू
रिश्ते ही नाम हो गए
अपनी पहचान और नाम
जाने कहाँ खो गए ?
जीवन की किताब के पन्ने
कोरे ही रह गए

तुम



बंद क्यूँ है

द्वार ये

भीतर समा जाऊँगी ऐसे
समाया था कबीर मे
लाल रंग जैसे
तुम एक बार
मेरे लिए
ऐसा करके तो देखो

रचे गए अर्थ जो

तुम वेद और पुराणो के
जिल्द बने
पवित्रता के अहसास मे
डूबे रहे
मैं बनी अक्षर उनका
भाव मे डूबी रही
अब ब्रह्मा के 'द' की तरह
मुझसे भी
एक अर्थ की उत्पत्ति हो रही है
और खोजना है तुम्हे

काश ! हो जाए ऐसा !

मेरी खातिर
आसमान से उल्का बन
तुम विलग हुए
अपनी सम्पूर्णता से
मेरे हृदय की
रेगिस्तानी धरती मे
कही गहरे धँस गए
अब वहाँ
बनी है प्रेम जल की झील
काश !
सबके दिलो मे
ये ओएसिस' बन जाए

नासमझ होना भी क्या इतना

नदी की प्यास
तू नहीं समझ सकता
उसे जो जानता है
वो सागर-
जो चिर प्रतीक्षित रहता
नदी के लिए

मै जो हूँ तुम

काल गुरु ने
अनुभव के पाठ पढाए
मैंने जीवन पृष्ठो पर
लिख लिए
बन गया जीवन दर्शन ।
तुम विचार
मै उसका सार

बनी रहे प्रतीक्षा

सुनो मित्र !
नदी का रेत हो जाना
वैसा ही होता है
जैसे -
भीतर के प्रवाह का
मर जाना
पानी का सूख जाना
मित्र !
नदी रेत से चाहे भरे
किन्तु,
अपने प्रेम जल से
लाबालब रहे
एक व्याकुलता
एक तडप
समाहित रहे
सागर मे समाने की
बेतादी
और
सागर की प्रतीक्षा
यू ही बनी रहे

सीप के ह्रदय मे

'मैं'–
प्रतीक्षारत सीपी
प्यासी ऑखो से तकती
आसमान
'तुम'–
पावस के पहले बादल
प्यार तुम्हारा
स्वाति बूँद
अब पल रहा
सीप के ह्रदय मे
समय बना रहा
अनमोल मोती
आगत
स्वर्णिम युग का

यह माटी का दीप जला

स्वर्ण निर्मित
रत्न जटित
रजत सा
या
पीतल का
हो चाहे अनगढ
माटी का
व्यर्थ हैं वे दीप
यदि जलती नही
प्रेम बाती
न डला हो घृत
स्नेह का
दिपदिपाती लौ का सौन्दर्य
बनाता दीप को
जीवन्त उपयोगी औदार्य
उसे मिलती
शिव की सुन्दरता
ऐसे ही
माटी के दीप मे
अनुराग भरे
घृत से जलायी
ज्योत आत्मा की
लेकर आई
तेरे चरणो मे
अब होना चाहती
मीरा की तरह
एकाकार तुझमे
एककार तुझमे

अब –
दुनिया को देखने दो
मोती की चमक
खो जाने दो
सौन्दर्य मे
तुम –
तुम तो जान लो
उस सीपी का
अव्यक्त दर्द ।
अव्यक्त दर्द ॥

सच तू सागर ही है

सागर !
तू सिमट गया
अपनी वसुधा के लिए
दिल मे जगह बनाई
अपनी प्रियतमा के लिए
सागर !
तू सिमट गया
सलवटो सी लहरे लिए
तू सीमित हो गया
अपने अर्धांग के लिए
सागर !
सच तू सागर ही है
स्वीकार किया मैने

हसा तो मोती चुगे

मै अपने कानो के
बिल्कुल करीब
तुम्हारे होटो से
सुनना चाहती हूँ
तुम्हारी कविता
तुम्हारी आवाज शब्द
और कविता के अर्थ
उतर जाए
मेरी आत्मा की गहराई मे
और बन जाए मानसरोवर के मोती
फिर मै हस बन कर चुग सकू उन्हे
अपने आहार के लिए

कहने भर का प्यार

क्या
मैं मूर्ति हूँ ?
तुमने-
एक पुतला दे दिया
और कहा
इससे प्यार करो
कौन थे वो ?
जो आए
और
हमारे
भाग्य निर्माता
बन गए
हमारे
प्यार करने का हक
हमीं से
छीन ले गए

जब उठते हैं कदम

तुम
कौन हो ?
हमे
बदी बनाने वाले
अपनी
इच्छा रेखा पर
चलाने वाले
देखो तो -
तुम्हारी रेखा
छोटी पड गई है
हमारे कदम
बडे हो गए हैं

रहना तुम सावधान

क्या सच ही
हम गुलाम हैं ?
या
तुम्हारे अह को
बनाए रखने के लिए
हम
गुलाम बन बैठी हैं ?
हमारी स्वेच्छा को
मकड जाल बनाने वालो
आज हम अपना जाला
खुद ही खा लेती हैं
रहना तुम सावधान ।

मानोगे इतना भर

इस मैं मे
तुम्हारा कुछ खो गया है
एक सलाह दूँ,
मानोगे ?
इस मैं को कहीं छोड आओ
तुम स्वय को पा लोगे

बंद क्यूँ है द्वार ये

तुम एक बार-
मेरे लिए
अपने दिमाग की खिड़कियाँ
और मन के दरवाजे
खोलो तो सही
मैं मलयज पवन बन
सुगंधित कर दूँगी
तुम्हारे वातायन
महका दूँगी
मन का ससार
तुम एक बार-
मेरे लिए
ये द्वार खोलो तो सही
मैं प्रेम का गुलाल बन
मन के आकाश पे छा जाऊँगी
गुलाबी हो जाएगे सपने
प्रेम का ऐसा रग बन जाऊँगी
फिर न चढेगा कोई रग तुम्हारे
भीतर समा जाऊँगी ऐसे
समाया था कबीर मे लाल रग जैसे
तुम एक बार
मेरे लिए
ऐसा करके तो देखो

मैं



यह जो है
कोना मेरा

गाएगा दिल कोई फसाना
मेरी जुबानी
सुनेगा नींद मे डूबा जहाँ
कोई नई कहानी

रग-रग बहता जो

माँ-बाप
बच्चो को पाल रहे हैं
अपने जीवन के जहर को
प्रेम की चाशनी मे डुबाकर
चटा रहे हैं
बडे होने तक भर जाता है
उनकी रग-रग मे जहर
जहाँ माँ-बाप को भी
उसके काटे का तोड़ नहीं मिलता

हम होते हैं जब।

चिडिया जैसे चुगती है
ढेरी से अपने लिए दाना
वैसे ही हम-
जीवन प्रवाह से
चुराते हैं कुछ पल
जिनमे छिपे होते हैं
छोटे-छोटे सुख
और नन्हीं नन्हीं खुशियॉं
तब लगता है हमे
हम भी हो गए हैं चिडिया

अब यह जो है प्रकाश तेरा

न जाने कहाँ से
झोको के साथ आती रही
दुखो की रेत
और मैं स्वय को
उस रेत से मॉजती रही
दर्द की लहरे
आती रहीं
अपने जल से धोती रहीं
मैं चमकती रही
उजलती ही गई
और अब
मेरी आत्मा मे उजाला
ही उजाला है ।

एक ख्वाहिश भर !

ऑख बद होती है
तब जन्म लेता है
एक सपना
बडा होता है वो
पल-पल
फिर सपने से
जन्म लेती है
एक ख्वाहिश -
और आँख खुलते ही
लुट जाती है ख्वाहिश
दम तोड जाता है सपना
हम थाम कर किताब
यथार्थ की
उसके शब्दो में ढूँढते है
तन-मन अपना
कैसा लगा यह होना हमारा !

उतरना होता है जब भीतर।

साक्षी हूँ मैं -
मैंने देखी है
एक ऐसी नदी
जिसे तलाश थी
एक समन्दर की
समाहित कर ले अपने मे उसे
द्वैत-अद्वैत हो जाय
तलाश दम तोडती गई
प्रतीक्षा बढती रही
नदी लबालब होती रही
फिर मैंने देखा एक दिन
वह नदी
स्वय ही समन्दर हो गई

झील पर यह सिहरन

उन ऑखो को देखा था
झील बनते हुए
झिलमिला उठा
डूबते सूरज का अक्स
झील मे
कितना सुन्दर दृश्य था
मेरी भी ऑखे
उस झील मे समाने को
हो उठीं व्याकुल
और मैंने देखा-
मेरी ऑखे भी झील बनकर
समा गई उस झील मे

फिर भी कहना सुनोगे मेरा।

कविता निकलती है
शब्द बनकर
कवि की आत्मा से
बात करती है
आत्मा आत्मा से
जिनकी आत्मा को
ढॉप लेती है
काली चादर
वे कविता नहीं सुनते
उनकी आत्मा से
नहीं निकलती है कविता

सब कुछ जबकि है नीद मे

नीद मे भी पलको पर
ख्वाब पनपते हैं
नीद मे ही वो ख्वाब
बिखर जाते हैं
तब नींद मे ही
मेरी आँखे
दो बूँद जल
और दो फूल प्यार के
चढा आती हैं
उनकी कब्र पर
इस तरह नींद मे ही
मैं नीद का
देखती हूँ जागरण

कौन है देगा जो उत्तर।

मैं तितली हूँ ?
या
उसका घायल पख ?
जिसमे रग और कोमलता
हैं बरकरार
किन्तु,
जीवन्त चिह्नो से
नहीं है सरोकार
या मैं।
पख विहीन तितली
जो रेग सकती है
उड़ नहीं सकती
फूलो पर मडरा नहीं सकती
पूछू मैं तुमसे ?
किसने छीने मेरे पख ?
किसने की ये मेरी गति ?

पास भर रहने से मौन।

मै वृक्ष हूँ -
जडत्व चेतना लिए
लगते मुझे
ईश्वरीय सृष्टि के
जीव प्यारे
उनके सामीप्य की इच्छा ने
सिर उठाया
विवशता ने मेरा माथा
सहलाया
तब अपने ही
अश्रुजलो से सींचते
करने लगा स्वय को
हरा-भरा
पुष्पित
पल्लवित
किसी का बसेरा
किसी की भूख
किसी का पडाव
किसी की प्यास
बन गया
मैं अबोला
झूमता आनन्द से
पा रहा सुख
इस मौन मे

जब होता है जन्म प्रकाश का

अधेरी लम्बी गुफाओ की
यात्रा करते हुए
ज्ञात हुआ -
व्यक्ति रोशनी की तलाश मे
क्यो रहता है ?
अधेरा !
जहाँ व्यक्ति सहमता है
स्वय से
पहचानता है
स्वय को
जब सारे भय
पीड़ाएँ सत्रास
भोग लेता है वह
तब यात्रा पूर्ण होती है
प्रकाश का जन्म होता है
उसी अधकार से
तन मन से मिट जाती है
अधेरे की छाया
रश्मियों से दीपित हो जाती है
हमारी काया
व्यक्ति भूलने लगता है
वे पल
जो करते रहे छल
अतीत आज और कल
इसकी सधि रेखा पर खड़ा
हर पल - हर पल

देखो यह होना हमारा

जिन्दगी के हर मोड पर
छले जाते रहे हम
कभी वक्त
कभी शख्स
कभी साया
कभी माया से
छले जाते रहे हम
कभी मन
कभी तन
कभी भावनाएँ
कभी सवेदनाएँ
छले जाते रहे हरदम
जिन्दगी जो सपाट न थी
मोड थे
पेचीदगियाँ थीं
आँख मे ख्वाब
राह मे खार थे
सगीनो से हाथ थे
फिर भी हम चलते रहे
मोम बन पिघलते रहे

मैंने जो देख लिया

मेरे रुदन मे छिपी है
तुम्हारी हँसी
फूल मे खुशबू
जैसे है बसी
मेरी पीड़ा मे छुपा है
तुम्हारा सुख
सीप मे मोती सा पाला है
तुम्हारा दु ख
मेरी पीड़ा
मेरे दुःख
मुझे जी लेने दो
सृजन का ये दर्द
मुझे सह लेने दो
क्या हुआ ?
मैं रोई
तड़पी
कराही
तुम्हारी आँख के तारे
मुस्कानों के फूल
चेहरे पे खुशियो की धूप
देख तो ली

जबकि तुम हो काल चक्र

हे काल चक्र ।
मेरे जीवन की गति को भी
तीव्र से तीव्रतर करने मे
मदद कर
कुछ दृश्य
जो 'आँखो के आगे आ रहे, हैं
या आने वाले हैं
बिना मेरी स्मृति मे आए
या बिना मेरी सवेदना को छुए
शीघ्र से शीघ्रतर निकल जाए
और मैं
एक आश्वस्त सॉस ले सकू
जबकि तुम
हो ही चुके हो जो चक्राकित ।
कैसे सुनोगे प्रार्थना
यह मेरी ।

पीते हुए अंधेरा

बैठ गए मकानो मे
ऊँची कर लीं दीवारे
बंद कर लिए दरवाजे
रख लिए हाथ
दोनो कानो पे
कुछ न सुनने के लिए
और
मुँह खुला छोड दिया
कुछ भी कहने के लिए
बंद कमरो की
कृत्रिम रोशनी मे
भौतिकान्ध हो गए हम
काले चश्मे लगाए
पीते हुए अंधेरा
सुख के दायरे खोजते
बुढापे की सलवटो में
खो गए हम

कौन देगा वह जो छीना गया

मैंने चलना चाहा था -
भेड चाल से अलग
काट दिए गए मेरे पॉव
मैंने हाथ उठाया -
क्राति के लिए
तोड दिये गए मेरे हाथ
ऑखे जो बद थीं अब तक
खोला उन्हे
दिखी उनमे जिजीविषा
फोड दिया गया उन्हे भी
मैंने बोलना चाहा -
कहनी चाही बात आत्मा की
काट के फैंक दिया गया
जीभ को भी
किन्तु आज ।
(उनकी सह्रदयता तो देखो)
वहीं ला रहे हैं
मेरे लिए बैसाखी
प्रबन्ध कर रहे हैं
नकली हाथो का
नेत्रदान की भी लगी है होड
सोचती हूँ
मुझे जुबान कौन देगा ?
जुबान कौन देगा ?

इन जगलो के बीच वह

महानगरो मे -
उग आई कुकरमुत्ते सी इमारते
ताड के वृक्षो को
बौना करती ऊँची ऊँची इमारते
अब उनमे रेग रहे
चीटियो से आदमी
घने जगलो को मैदान बनाते
तडप रहे हैं आदमी
क्योकि
अब वही जगल उग आए हैं भीतर
ऑखो मे उनकी
फैल गए हैं बीहड
उनका फैलाव लील रहा है आदमी
एक दूसरे को
नाचता खसोटता आदमी
अपनी पहचान को भटकता
इन इमारतो के बीच
खुद को ढूँढता आदमी

भरना धरा का नवाकुर भीतर

तपती धरती के सीने पर
पडती है बारिश की पहली फुहार
वही है प्रेम का प्रथम अहसास
मौसम खुशनुमा है
पर उमस कितनी बढ जाती है
प्यार के मौसम मे भी
घुटन तडपाती है
दूसरी बारिश बरसती है
धरती की उमस कम होती है
प्रेमिल स्पर्श–प्रतिस्पर्श
सहलाते हैं जब तन–मन
यही अनुभूति
कितनी गहरे उतरती है
धरती नवाकुरो से भर जाती है
भावनाओ के बीच प्रस्फुटन पा जाते
एक इन्द्रधनुष आकाश मे
दूसरा अनगिनत रग लिए
मन के नभ पर उभर आता है
मै और धरती
धरती और मै
शामिल हो जाते हैं
एक दूसरे के अहसास मे
अपनी तपन अपनी घुटन अपनी उमस
गीली मिट्टी की सौधी महक
पा जाते है
वही महक सबकी सासो मे भर
प्यार की बारिश का
अहसास करा जाते हैं

और हम है कि

मर गया है
सबकी ऑख का पानी
अब नहीं आता
किसी भी ऑख मे पानी
आए भी कैसे ?
खार दिल मे जम गया
नफरतो की आग से
जल गया पानी
अब कोई चुभन
कोई टीस
दिलो को नहीं सालती
अब कोई ऑख
सपना नहीं पालती
दिलो मे तडप बरकरार नहीं
मन के तारो पे कोई
प्रेम गीत गाता नहीं
अब कोई हाथ
गिरतो को थामता नहीं
और हम है कि
अपनी ऑख के दरिया मे
उम्मीदों का झिलमिलाता
अक्स लिए
इन कायरो के सामने
हथियार डालते नहीं

आशा है जो देवता भी

कहानी सुनते
बच्चे ने पूछा –
माँ !
अब परियाँ धरती पर
क्यू नहीं आती ?
माँ कुछ देर चुप रही
उसके चेहरे पर
वेदना की एक लहर
आई और गई
स्वय को सँभाल बोली –
बेटा !
अब फूल खिलने से पहले ही
मुरझा जाते हैं
कलियाँ अस्तित्व पाने से पहले ही
मसल दी जाती हैं
अत सुगधित बयार बहती ही नही
परियाँ अब धरती पर
आती ही नही
बच्चे का कुतुहल और बढा
अपनी नन्ही सोच द्वारा
एक प्रश्न और उठाया –
माँ !
अब देवता धरती पर
अवतार क्यू नहीं लेते ?
माँ चुप रह जाना चाहती थी
उस मासूम को यथार्थ के दर्शन
अभी नहीं कराना चाहती थी

किन्तु
बालक की जिज्ञासु ऑखे
टिकी थी उसके चेहरे पर
उसके सिर को सहलाती
शून्य मे निहारती
शून्यता से भरी बोली –
बेटा !
देवताओ का मुखौटा लगा कर
इसान
हैवानियत का ताडव कर रहा है
उनके आदर्शों की आड मे
स्वार्थ सिद्ध कर रहा है
इसान के दोगलेपन की नीति देख
भयभीत हैं देवता भी
आए तो कैसे समझाएगे
अपनी असलियत को देवता भी
देवता इसलिए धरती पर
अवतार लेने आते ही नहीं
इस धरा को पावन बनाने
आदर्श सिखाने आते ही नहीं
पता नहीं–
बच्चे की समझ मे कितना आया
शून्य मे निहारता वह सो गया
देख रही थी माँ
मासूम और निष्कलक छवि मे
ईश्वरीय रूप
और सोचती थी माँ –
कौन कहता है ?
देवता धरा पर
अवतार लेने आते ही नहीं
परिया भी न उतरे आकाश से
धरती पर

होता ही रहेगा तब तक

सत्य !
अब केवल राख की ढेरी मे
तब्दील होते जा रहे है
हमारे मन और चेहरे भी
स्याह होते जा रहे हैं
अब बादल भी होगे राख के
और वर्षा भी
फैल जायेगी मृत्यु-गध
पूरी सृष्टि मे
ऐसा होता रहेगा तब तक
जब तक हम
सत्य के हाथो
सत्य को जलने से न रोकेगे
सत्य की शाश्वतता पर
यू ही
प्रश्न चिह्न लगाएगे

छूटने पर सब कुछ

प्रेम-पथ मे
छूट गया तन-मन
और अब
आत्मा भी
अब मैं
रही ही नहीं
रह गई केवल माटी
अब इस माटी मे
क्या खोज रहे ?
इस प्रेम-पथ मे
छूट गया
सब कुछ ।
सब कुछ ॥

दीप अपने प्रेम के

युग का सूरज
काले बादलो की
ओट हो गया
लगा ऐसे
उजाला अन्धकार की गोट से
पिट गया
निशाचर प्रसन्न थे
हर पल के
अधिकारी थे
देवता सहम उठे
और
मानव करने लगा -
त्राहि माम् ! त्राहि माम् !
काम आया ऐसे मे
दीप मेरे प्यार का
मद्धिम ही सही
प्रकाश का स्रोत
हो गया काम का
प्रेरणा जगाई
मेरे दीप ने
सबके मनो मे
सभी ने
फिर सभाले-सँवारे
दीप अपने प्रेम के
जल उठे तब अनेक दीप
इस सृष्टि मे प्रेम के
अब निशाचार कर रहे थे -
त्राहि माम् ! त्राहि माम् !

हम ही कहीं शायद

कृष्ण के हाथ मे
सुदर्शन चक्र नहीं
समय चक्र है
जो चल रहा
अविराम गति से
ब्रह्मा की तरह
सृजन मे मगन
पालता विष्णु की तरह
हर युग को
शिशु की तरह
और
हर पल का नाश करता
अधर्म का संहार करता
कहीं ये शिव ही तो नहीं
वक्त की मार
उसका अट्टाहस तो नहीं
यही सही है
जिस समय मे
वास हो त्रिदेव का
वो अच्छा या बुरा नहीं
केवल अच्छा ही है
बुरा कहीं
हम ही तो नहीं बना रहे
समय के स्वरूप को
यही सोचना
हमारे लिए जरूरी है ।
हमारे लिए जरूरी है ॥

है शेष कोई उपाय

क्या होगा
इस युग का ?
जहाँ एक नन्हीं बच्ची
लाल फूलो से लदी
बेल को देख कर
डर जाती है
मुँह फेर कर
कर लेती है
कस कर आँखे बद
लगता है –
इस हिसक समय मे
फूल उसे रक्त सने
प्रतीत होते हैं ।
पशुओ का प्यार भी
भयभीत करता है उसे
इन पशुओ मे
शायद देखती है
आज का आदमी
नहीं कर पाती भेद
पशु और आदमी मे
अबोध मन का
यह अहसास
युग का सत्य बन
झाँकता है
उसकी आँखो से
दूषित होती
सृष्टि को बचाने का

सुवास उठी देह से

फूल और काँटे
अब हो रहे हैं एक
देह के पार
चुभन
रक्त
दर्द
टीस
काँटे पिघल गए हैं
स्पर्श
नर्म
कोमल
सुवासित
फूल बन गयी हैं देह
देह अब
कुछ नही
एक
सुवास बन गई है

मिलना उससे मेरा

एक दिन
मुझे राह मे मिला
लुज पुज लहुलुहान
वार्धक्य की देहरी पर खडा
घसीटता अपने पैरो को
दयनीयता की मूरत
चला जा रहा था
एक अदृश्य पगडडी पर
भावशून्य निर्विकार सा
रिसते घावो पर
भिनभिनाती मक्खियो को
उडाने मे असमर्थ बेपरवाह
वीभत्स रस का साक्षात स्वरूप
जिसे देख मैं विचलित हो गई
मुँह फेर कर ऑख झुका कर
निकल जाना चाहती थी
इसी उहापोह मे थी
कि वह मेरे ठीक सामने आ पहुँचा
स्वभाववश अनदेखा न कर सकी
पूछ बैठी -
कौन हो तुम ?
घावो पर मरहम पट्टी
क्यो नही करवाते ?
यात्रा क्यो कर रहे हो ?
मेरे प्रश्नो की बढती कतार को
उसके इशारे ने रोका
घरघराती गभीर वाणी मे बोला -

मैं सत्य हूँ।
वो सत्य जिसे लोग कटु कहते हैं
अनदेखा करते हैं
कतराते हैं
बचते हैं
कुछ को दहशत होती है
किसी को वहशत होती है
कोई वहशी हो उठता है
वही मेरा ये हाल कर देता है
मेरी हत्या का अथक प्रयास
ढेरो वार करता है
इतना रक्त बहने
घाव सहने के बाद भी
मरता नहीं
क्योकि
मैं अमर हूँ।
अब ये अमरत्व
इस युग मे शाप बन गया –
काल के साथ चलना
मेरी विवशता बन गया
लोगो के इस 'सत्कार' को ही
अपनी नियति समझ
चला जा रहा हूँ
मैं सत्य हूँ।
कलियुग मे मेरी यही नियति है
यही नियति है

मैं रचती हूं जिसे

एक बच्चा
रहता है तुम्हारे अदर
एक बच्चा
रहता है मेरे अदर भी
तुमने थपकी दी
सुला दिया
मैंने थपथपाया
जगा दिया
तुम भूल गए सुलाकर
और मैं
खेलती हूँ,
हँसती हूँ,
खिलखिलाती हूँ,
रूठती हूँ,
मनाती हूँ,
बच्चा मेरे सग
गा रहा है
मुस्करा रहा है
बच्चा आश्वस्त है
मेरे साथ
भविष्य के प्रति
उसकी आँखो मे
पहचान है मेरे प्रति
और मैं खुश हूँ
मेरे अदर का बच्चा
जी रहा है बचपन
उन्मुक्त भाव से

नतमस्तक है वह
श्रद्धा के भाव से
उसके हाथ जुडे हैं
ईश्वर के सामने
कृतज्ञता के भाव से

रचयिता होती हूँ जब मैं

मेरे माथे पे उतरा आया चाँद
मेरे गर्भ मे सूरज ने
फैला दिए अपने पाँव
निकलने लगी ज्योतिर्पुंजे
एक-एक कर
और मैं
इस सृष्टि की माँ हो गई

यह जो है कोना मेरा

दिल के तारो को
छेड देती है रात
एक दर्द का राग
बिखर जाता है आलम मे
रात भर साज के तार
टूटते रहते हैं
भोर होने तक स्वर
कहीं खो जाते हैं
सवेरे का सूरज पाकर
वह सितार
रख देती हूँ मन के कोने मे
ओढ कर मुस्कुराहट का वसन
शामिल होती हू
दुनिया की भीड मे
किन्तु
ये भीड और भी अकेला कर देती है मुझे
अजनबी लोगो के
पराए चेहरो मे
ढूढती हूँ वो शख्स
जो अपना सा लगे
दोस्त सच्चा सा लगे
नहीं मिलता तो करती हूँ
रात की प्रतीक्षा
मैं होऊँगी
उसका अहसास होगा
हाथ मे टूटे तारो का सितार होगा
रात के हाथ में मिजराब होगा

निकलेगी फिर से
दर्द की एक रागिनी
गाएगा दिल कोई फसाना
मेरी जुबानी
सुनेगा नीद मे डूबा जहाँ
कोई नई कहानी





वत्सला पाण्डेय 'वत्सल'

जन्म- 6 मई (बुद्ध पूर्णिमा) बीकानेर
शिक्षा- स्नातकोत्तर (समाज शास्त्र एव ि
शोध प्रबन्ध- हिन्दी के मिथकीय प्रबन्ध क
का बोधमूलक अध्ययन
लघु शोध प्रबन्ध- अज्ञेय एक निबन्धक
मूल्याकन
प्रवीणता- सगीत लेखन अध्यापन (मा
निर्देशन के रूप में) आध्यात्
अध्ययन और पौराणिक कथा
के प्रतीक खोलना। व्यक्ति क
सोई हुई आस्था की पुनर्स्थाप
जीवन का लक्ष्य- आध्यात्मिक गुरु की
का प्रचार प्रसार उसक
प्रासगिकता नव युवा
तक पहुचाना
लेखन- 1986 20 सितम्बर से प्रारम्
कहानिया लघुकथाए कविताए
समीक्षाए अनेक पत्र-पत्रिकाओं
प्रकाशित।
सम्पर्क- 1स-4 पवनपुरी बीकानेर (रा